
चन्दामामा
माँ–बच्चों का मासिक पत्र
1st JULY '52
6 as



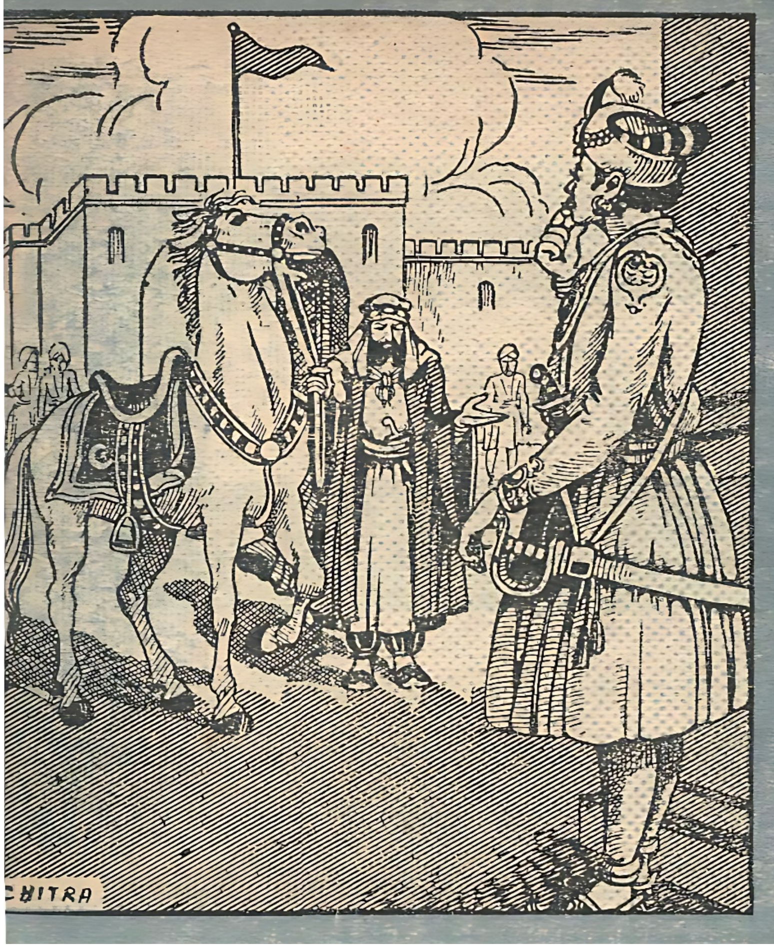
किसी समय गुर्जर देश में एक राजा था। उसे घोड़ों का बहुत भारी शौक था। अनगिनत रुपए खर्च करके वह देश-विदेश से घोड़े मँगवाता और अपने अस्तबल की शोभा बढ़ाता था। ज़रूरी से ज़रूरी काम-काज छोड़ कर वह हर रोज़ एक बार अपने अस्तबल में जाता, अपने घोड़ों को जी भर कर देखता, उनकी गरदन सहलाता और उनसे मीठी-मीठी बातें कर आता। घोड़ों को देखते ही उस राजा का मन फूल जाता। इसी से उसका नाम ही 'घोड़ों का राजा' पड़ गया था।

एक दिन वह राजा दरबार में बैठा हुआ था कि द्वारपाल ने आकर कहा-"महाराज ! एक अरबी सौदागर एक घोड़ा लाया है और फाटक पर हुजूर के दर्शन की राह देख रहा है। ले आऊँ उसे ?"

घोड़े का नाम सुनते ही राजा तुरन्त सिंहासन से उतर पड़ा और उस अरबी सौदागर से बातें करने के लिए फटक की ओर चला।

वहाँ जाने पर उस अरबी सौदागर ने सर झुका कर बन्दगी बजाई और कहा-"हुजूर ! यह बहुत अच्छा घोड़ा है। बहुत लोगों ने इस घोड़े को लेना चाहा। लेकिन मैंने बेचने से इनकार कर दिया और खास तौर पर आपके लिए ले आया। इस घोड़े की जात कैसी है, इसके सुलच्छन कैसे हैं, यह सब मैं अपने मुँह से नहीं कहूँगा। मैं अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू नहीं बनना चाहता। लेकिन एक बात अर्ज कर देता हूँ। मैं करीब करीब सारे अरब में घूना-फिरा हूँ। लेकिन मुझे कहीं ऐसा घोड़ा न दिखाई दिया। मैंने सुना था कि हुजूर घोड़ों के बड़े पारखी हैं। इसलिए आपको

डूँगर सिंह



ही देने का खयाल करके इसे यहाँ ले आया।"

"अच्छा ! बताओ, दाम क्या लोगे ?" राजा ने पूछा।

"दाम तो नहीं के बराबर है हुजूर ! सिर्फ एक लाख !" उस सौदागर ने कहा।

यह सुन कर राजा दङ्ग रह गया। उसने कहा-"एक लाख रुपया एक घोड़े का दाम ! तुम मज़ाक तो नहीं कर रहे हो ! मेरे अस्तबल का सबसे अच्छा घोड़ा है पवन ! लेकिन मुझे उसके लिए पचीस हज़ार से ज्यादा नहीं देना पड़ा। और एक घोड़ा है जो हवा से बातें करता है। उसका नाम है रामबान। मैंने उसके लिए सिर्फ पन्द्रह हज़ार दिए। लेकिन उसका मालिक खुशी से फूल गया था। और एक घोड़ा है जिसका नाम 'तेज' है। मैंने उसके लिए दस हज़ार ही दिए। उसका मालिक भी बहुत खुश होकर गया था।"

सौदागर ने कहा-"मैं जानता हूँ कि हुजूर के अस्तबल में बहुत अच्छे अच्छे घोड़े हैं। इसीलिए मैंने अपने घोड़े का दाम एक लाख बताया। कोई दूसरा पूछता तो दो लाख बताता।"

यह सुन कर राजा का अचरज और भी बढ़ गया। "तुम्हारे घोड़े की क्या खासियत है ?" उसने पूछा।

"अब मैं आप से क्या बताऊँ ? आप खुद देख लीजिएगा !" उस सौदागर ने जवाब दिया।

राजा का कौतूहल और भी बढ़ गया। वह घोड़ों का शौकीन तो था ही। इसलिए उसने मन्त्री से कहा-"घोड़े का दाम चुका दो। मैंने यह घोड़ा लेने का निश्चय कर लिया है।"

मन्त्री बेचारा अवाक खड़ा रह गया। आखिर उसने राजा के कान में कहा-

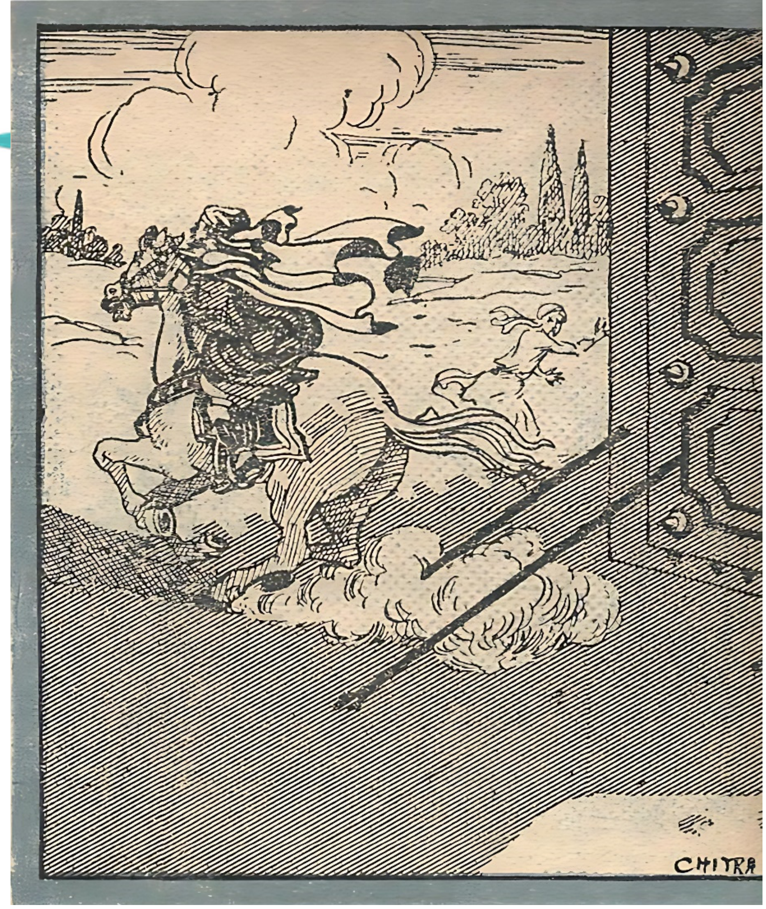
"हुजूर ! सोच-विचार लीजिए अच्छी तरह ! एक लाख ! पीछे कहीं पछताना न पड़े !" लेकिन राजा अपनी बात पर अड़ा रह गया। तब मन्त्री ने लाचार होकर घोड़े का दाम चुका दिया।

सौदागर ने रुपयों की थैली ली और उस घोड़े के पास जाकर उससे बिदा लेने के बहाने उछल कर उस पर सवार हो गया और ऐंड लगा दी। अब क्या था ? राजा, मन्त्री और अन्य दरबारी मुँह बाए ताकते खड़े रह गए। घोड़ा पल भर में आँखों से ओझल हो गया।

आखिर राजा चिल्लाया-"दगा ! दगा ! लाख रुपए लेकर भागा जा रहा है ! पकड़ो ! पकड़ो उसे ! तुरन्त राजा के सिपाही अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर दौड़ पड़े। पवन रामबान और तेज नामक राजा के नामी घोड़ों पर चढ़ कर तीन सिपहसालार भी उस सौदागर को पकड़ने निकले।

राजा ने बहुत दुखी होकर कहा- "दगाबाज ने हमें कैसा विश्वास दिलाया ? आखिर रुपया लेकर भाग गया ! पाजी कहीं का !"

"हुजूर ! यह मैंने पहले ही कह दिया था। लेकिन आपने कान न दिया।"



मन्त्री सोच के साथ सिर हिलाते हुए बोला।

तब राजा ने झल्ला कर कहा-"क्या कहा था तुमने ? तुमने तो कहा नहीं था कि वह रुपया लेकर भाग जाएगा ? जब ऐसी बात थी तो साफ-साफ क्यों न कह दिया ?" यह कह कर वह मन्त्री पर बिगड़ने लगा।

इतने में उन्हें बहुत दूर पर धूल उड़ती हुई दिखाई दी। "हमारे सिपहसालार लौटे आ रहे हैं ! शायद वे उस सौदागर को नहीं पकड़ सके !" राजा ने निराश स्वर में कहा। "जी हुजूर !" मन्त्री

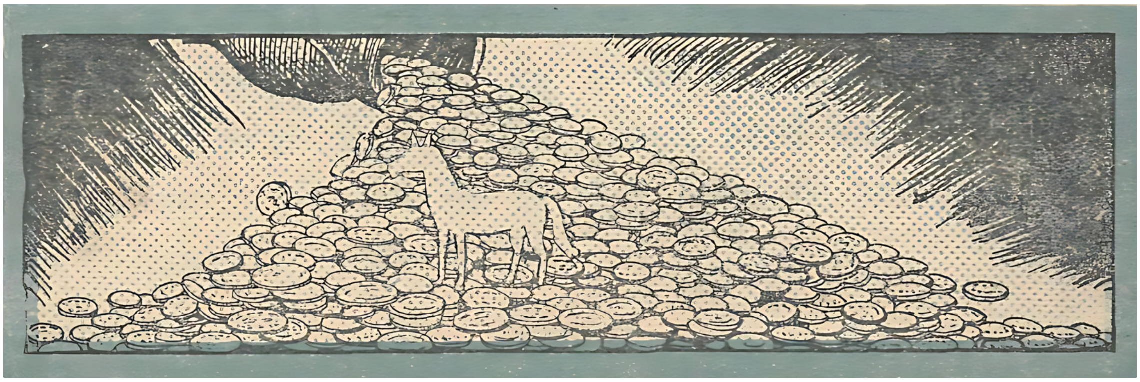
बोला। अब वह राजा को किसी बात में टोकना नहीं चाहता था।

इतने में वह लाख रुपए वाला घोड़ा सरपट आकर राजा के सामने खड़ा हो गया। उस पर से अरबी सौदागर मुसकराते हुए उतरा। उसने बन्दगी करके राजा से कहा-"हुजूर ! आप यहीं खड़े रहे और मैं इस घोड़े पर चढ़ कर पचास मील की सैर कर आया। मेरे पीछे आपके बड़े बड़े घुड़सवार आपके सब से अच्छे घोड़ों पर सवार होकर निकले। लेकिन उनको लौटने में अभी तीन-चार घण्टे लग जाएँगे। थोड़ी देर पहले मैंने आप से कहा था-"आप इस घोड़े को खरीद कर देख लीजिएगा। आपको खुद मालूम हो जाएगा।अब आप ही बताइए-यह घोड़ा लाख रुपए का है या नहीं !"

तब राजा ने चकित होकर कहा- "वाह ! वाह ! इस घोड़े के लिए एक लाख क्या, दस लाख भी दिए जाएँ तो कम होंगे। ऐसा घोड़ा हमने अब तक कभी नहीं देखा। साफ मालूम होता है कि इसके बारे में तुम ने कुछ भी बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहा। लेकिन जानते हो, हमने क्या सोचा ? हमने सोचा कि तुम लख रुपए लेकर भाग गए !"

"वाह ! भाग क्यों जाता ? ऐसा काम मैं कभी नहीं करता। मैंने घोड़े की करामात आपको दिखाने के लिए ही ऐसा किया। इस घोड़े का नाम सूर्य किरण है। सूरज की किरणें जितनी तेजी से दौड़ती हैं यह भी उतनी तेजी से दौड़ता है। हुजूर उसे अपने अस्तबल में बँधवा लें और मुझे अच्छा ईनाम दें।" उस सौदागर ने कहा।

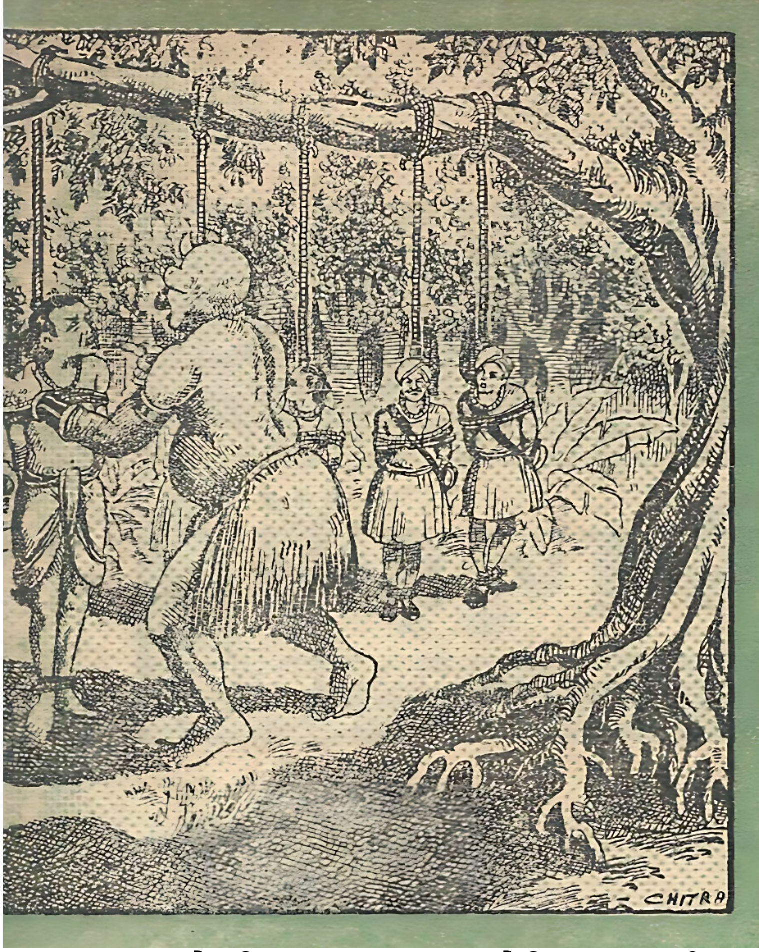
राजा ने उस घोड़े की बड़ाई और उस सौदागर की सचाई से खुश होकर उसे ईनाम के तौर पर दस हजार रुपए और दिला दिए। सौदागर खुशी-खुशी चला गया।





वह भयङ्कर दृश्य देख कर उदय थरथरा गया। वह निश्चेष्ट खड़ा रह गया। पहले सोचा कि अदृश्य होकर उन्हें छुड़ाए। लेकिन अब यह नामुमकिन था। बात यह थी कि उदय ने दौर्भाग्यवश वह सफेद बुकनी कहीं खो दी थी। इसी से उन काँसी के फन्दों और रस्सी से बँधे हुए अपने भाइयों को देख कर भी वह कुछ न कर सका। चुपचाप खड़ा देखता रह गया। उसके माथे से पसीना छूटने लगा और एक एक पल एक एक युग के समान बीतने लगा। राक्षस ने अपने बन्दियों को पेड़ों के पास ले जाकर उनके गले में फाँसी के फन्दे लगा दिए। अब रस्सियाँ खींचने भर की देर थी। उदय क्रोध के मारे सुध-बुध भूल कर उस पर टूट ही पड़ना चाहता था कि इतने में एक आवाज़ आई- "ठहरो!"

चौंक कर उदय ने उस ओर देखा। वह दाढ़ी वाले की आवाज़ थी। वह राक्षस से कह रहा था- "इन लोगों को बचाने के ख्याल से आज तक मैंने एक भेद तुम



से छिपा रखा था। लेकिन इनकी रक्षा मुझसे न हो सकी। उलटे मेरी जान पर आ बनी। इसलिए मैं वह भेद तुम्हें बताए देता हूँ। इतने दिन से तुम्हें हैरान करने वाले ये तीनों लड़के जुड़वें हैं।"

वह और भी कुछ कहना चाहता था कि राक्षस ने रोक कर कहा-"क्या कहा ? ये जुड़वे हैं ? तुम मुझे फिर धोखा देना चाहते हो? ये जुड़वें होते तो मेरी नज़र से कैसे बच जाते ?"

तब दाढ़ी वाले ने कहा-"ठीक है। लेकिन तुमने इन्हें जान-बूझ कर छोड़ दिया था।" यह कह कर उसने पहले जुड़वाँ भाइयों की आँखों में जो दोष था और जिसे उसने दूर किया था उसकी पूरी कहानी सुनाई।

सुन कर उस राक्षस ने कहा-"तब तो बलिदान के लिए पचास जुड़वें मिल गए ! मुझे विश्वास कैसे हो कि तुम सच कह रहे रहे हो ? क्या सबूत है कि ये जुड़वें हैं ? अच्छा! मैं इन्हीं से पूछता हूँ !" यह कह कर उसने प्रदोष और निशीथ की ओर देख कर पूछा-"बोलो, दाढ़ी वाला सच कह रहा है ? झूठ बताया तो खैर नहीं ! इसलिए सच सच बताओ ! अगर तुम सच- मुच जुड़वें हो तो तुम्हारे प्राण एक पवित्र कार्य के लिए अर्पित होंगे। इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं !" उसने कहा। तब प्रदोष और निशीथ ने आँसू बहाते हुए कहा कि दाढ़ी वाले का कहना सच है।

उदय जो छिप कर यह सब देख रहा था, क्रोध से दाँत पीसने लगा। "यह नतीजा है दया करके दाढ़ी वाले को छोड़ देने का !" उसके मन में हुआ कि तुरन्त तलवार खींच कर उस नमक हराम का काम तमाम कर दें। इतने में राक्षस की आवाज़ सुनाई दी- "तो वह तीसरा कहाँ है ?" "उसे घर गए सात दिन हो गए। अभी

तक लौट आना चाहिए था ! कौन जाने, राह में कोई दुर्घटना हो गई हो ! मुझे तो विश्वास नहीं कि वह सही-सलामत लौट आएगा !" दाढ़ी वाले ने जवाब दिया।

"फिर देरी किस बात की ? कल ही बलिदान पूरा करके देवी को प्रसन्न कर लूँगा। पहले जाकर सारा इन्तज़ाम कर लूँ ! पर यह न समझना कि तुम आसानी से छूट जाओगे !" यह कह कर राक्षस ने प्रदोष, निशीथ, दाढ़ी वाले और राजा के दोनों नौकरों को एक एक पेड़ से बाँध दिया और खुशी-खुशी गिद्ध बन कर आसमान में उड़ गया।

राक्षस के जाते ही उदय ने तलवार खींच ली और झपट कर दाढ़ी वाले के पास पहुँचा। उसने उसको वहीं तलवार के घाट उतार देना चाहा।

यह देख कर दाढ़ी वाले ने गिड़गिड़ाते हुए कहा-"ठहरो ! ठहरो! पहले मेरी बात तो सुन लो। पीछे जो मन में आए, करना।"

"और क्या सुनूँ ? जो सुन लिया वही काफी है ! मैंने तुम्हारी जान छोड़ दी, यही भारी भूल हुई। तुम्हें जो दण्ड दिया जाए, थोड़ा है ! बोलो, क्या कहते हो ?" उदय ने गरज कर पूछा।



"भैया ! तुम गलत सोच रहे हो ! लेकिन इसमें अचरज की कोई बात नहीं। सुनो ! मैंने तुम्हारा भेद राक्षस को इसलिए कह दिया जिससे हम सब की जान बच जाए। क्या करता ? प्राण-रक्षा की और कोई सूरत न थी ! मेरी हालत में तुम भी वही करते जो मैंने किया ! खैर मान लो कि मेरी चाल चल गई ! कल तक के लिए हमारी जान बच गई है। क्या इससे तुम्हें खुशी नहीं होती ?" दाढ़ी वाले ने उदय से कहा।



यह सुन कर उदय सोच में पड़ गया। थोड़ी देर तक सोच-विचार कर उसने कहा-"मान लो कि मैंने तुम्हारी बात पर विश्वास कर लिया। लेकिन इससे क्या होता है ? राक्षस के आने के पहले ही हम सब कैसे भाग सकेंगे ?"

"सोच-विचार कर बताऊँगा। पहले हम सबको छुड़ा दो !" दाढ़ी वाले ने कहा। तब उदय ने उन सबके बन्धन खोल दिए। फिर सब मिल कर सरोवर के पास गए। इनको देखते ही राजकुमारियाँ किनारे पर आ गईं।

तब दाढ़ी वाले ने उदय से कहा-"वह लाल बुकनी कहाँ है ? मुझे दे दो।" फिर उसने राजकुमारियों को नज़दीक बुलाया और लाल बुकनी थोड़ी सी लेकर सुहासिनी की बाँह पर मल दी। तुरन्त उसकी बाँह गायब हो गई। फिर उसने सुभाषिणी को बिठा कर थोड़ी सी उसके घुटने पर लगा दी। बस, उसका पाँव गायब हो गया। तब उसने थोड़ी सी बुकनी सुकेशिनी की आँखों में डाल दी। बस, उसकी दोनों आँखें जाती रहीं। इस तरह राजकुमारियों को लूली, लँगड़ी और अन्धी बनती देख कर उदय चिल्लाया-"यह तुमने क्या कर दिया ? क्या तुम हम लोगों की यही भलाई करना चाहते थे ?" वह तुरन्त क्रोध से पागल हो गया।

"ठहरो! उतावले न बनो! तुम्हें हर बात में शक क्यों होता है ?" यह कह कर दाढ़ी वाले ने उदय के कान में कुछ कह दिया।

तब उदय को सन्तोष हुआ। लेकिन उसने कहा-"आज तक जिन राजकुमारियों में कोई दोष न था उन्हें इस हालत में देख कर क्या राक्षस को शक न होगा ? इससे हमारा क्या फायदा है, सोचते हो ?"

"वह सब तो पीछे देखा जाएगा। अभी तो इसके सिवा कोई चारा नहीं है। हाँ, कल जब वह लौटेगा तो हम सब यथा-प्रकार पेड़ से बँधे होंगे। तुम सफेद बुकनी के प्रभाव से ओझल हो जाना और सारा हाल देखते रहना !" दाढ़ी वाले ने उदय से कहा।

यह सुन कर उदय के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह शरमाते हुए बोला-"वह बुकनी पास होती तो इतनी हैरानी की क्या ज़रूरत थी ! मैंने वह बुकनी राह में कहीं खो दी!"

"क्या कहा ? बुकनी खो दी ? अच्छा ! चिन्ता की कोई बात नहीं ! तुम हमें जो बुकनी दे गए थे वह यों ही धरी है। लो !" कह कर दाढ़ी वाले ने बुकनी की पुड़िया उदय को दे दी।

उदय ने बुकनी ले ली और उन सबको पहले की तरह पेड़ से बाँध दिया। फिर बुकनी की महिमा से स्वयं अदृश्य हो गया।

* * * * * *

दूसरे दिन सबेरा होते-होते बवण्डर उठ खड़ा हुआ। इससे सबने जान लिया कि राक्षस आ रहा है। प्रदोष, निशीथ और दाढ़ी वाले ने अपना सर लटका लिया जैसे रस्सी से बँधे-बँधे वे बहुत लाचार हो गए हों। थोड़ी देर

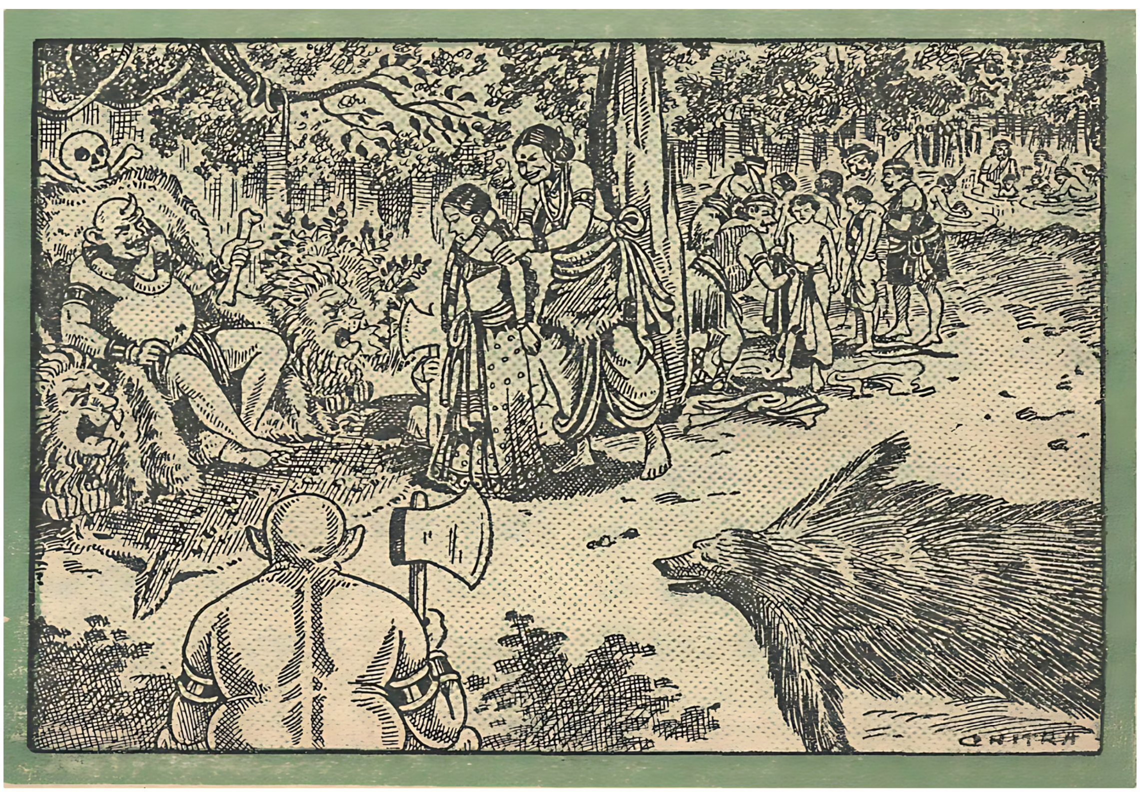


में राक्षस वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ फरसे हाथ में लिए दो नौकर भी आ रहे थे। नौकरों के पीछे और भी बहुत से राक्षस फूलों की मालाएँ लिए चले आ रहे थे।

प्रदोष और निशीथ जिस जगह थे वहाँ पहुँचते ही राक्षस अपने सिंहासन पर जा बैठा। "सरोवर में जितने जुड़वें हैं उन सब को नहलाओ और सजा-धजा कर मेरे सामने लाकर कतार में खड़ा कर दो !" राक्षस ने अपने नौकरों को हुक्म दिया। नौकर अपने अपने काम पर चले गए। कुछ जुड़वों को नहलाने लगे। कुछ उन्हें

सजाने लगे। कुछ उन्हें लाकर राक्षस के सामने कतार में खड़ा करने लगे। उन सबको देख कर राक्षस फूला न समाया। वह अपने सामने खड़ी राजकुमारियों को देखते हुए एक एक से पूछने लगा-"क्या तुम राजकुमारी कनकलता हो ? तुम अवन्ती के राजा की लड़की हो न ? और तुम मणिपुर के राजकुमार हो न ?" उसके ये सवाल सुन कर वे बेचारे सब चुपचाप आँसू बहाने लगे। इतने में एक नौकरानी ने एक राजकुमारी को राक्षस के सामने ला खड़ा किया और पूछा-"मालिक ! यह लड़की तो अन्धी है। काली माँ इसे कैसे लेंगी ?" यह सुन कर राक्षस का मुँह सफेद हो गया। "क्या कहा ? यह अन्धी है ?" यों कहते हुए वह सिंहासन से उतर कर उसे देखने चला। इतने में एक नौकरानी और एक राजकुमारी को ले आई और बोली-"यह क्या ? यह लड़की तो लँगड़ी है !"

अब राक्षस के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह आँखों से अङ्गारे बरसाते हुए "धोखा ! दगा !" "धोखा ! दगा !" कह कर मुट्ठियाँ बाँध कर इस तरह चिल्लाया कि धरती और आसमान काँपने लगे।

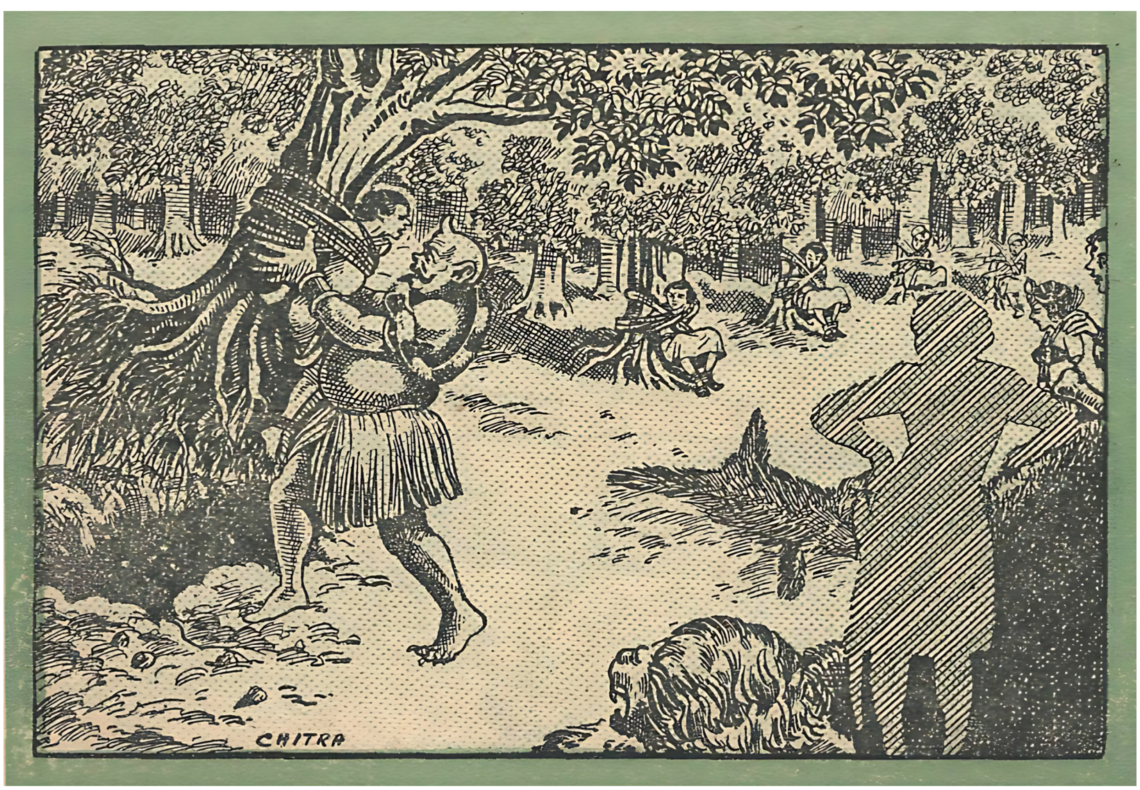


इतने में एक नौकरानी ने और एक राजकुमारी को उसके सामने लाकर खड़ा किया और कहा-"मालिक! यह लड़की तो लूली है!"

अब तो राक्षस का मिजाज़ सातवें आसमान पर चढ़ गया। उसने झपट कर जाकर दाढ़ी वाले को इतने वेग से उठा लिया कि वह जिस पेड़ से बँधा हुआ था वह भी उखड़ आया। "नमकहराम ! बता, तूने यह क्या किया है ? ये तीनों ऐसी क्यों हो गई ? यह सब तेरी करतूत है ! सच सच बता, नहीं तो तुझे अभी पीस डालूँगा।" उसने उसे झकोर कर कहा। लेकिन दाढ़ी वाला ज़रा भी नहीं डरा। उस ने कहा-"चिल्लाने से क्या होता है ? सुनो ! तुम्हें शक होता है कि यह सब मेरी करतूत है ! है न ? मैं जो कुछ कहता हूँ, सुन लो। फिर तुम्हारा जो मन हो करना !"

"बस, बस, जल्दी बोलो ! क्या कहना चाहते हो ? तुमने मेरे सारे कराए पर पानी फेर दिया।" राक्षस ने झल्ला कर उस पेड़ को नीचे डालते हुए कहा।

"मैं नहीं जानता कि उनकी यह हालत कैसे हुई? लेकिन मैं अटकल



लगा सकता हूँ। एक ही ऐसा व्यक्ति है जिसमें यह सब करने की सामर्थ्य है और वह है उदय ! जब मैंने उन भाइयों की आँखें अच्छी कर दी थीं, उस समय सारा भेद उससे बता दिया था। इसके अलावा अञ्जन, बुकनियाँ वगैरह सब उनके पास रह गईं। अगर वह जिन्दा होगा तो ज़रूर कभी न कभी तुम्हारे चंगुल में फँसेगा ही। उस समय उसके द्वारा इन राजकुमारियों को पहले की तरह बना सकते हो। तब तक इन सब को यथा-प्रकार बन्दी बना रखो। मेरी समझ में यह सबसे अच्छा उपाय है। आगे तुम्हारी मरजी !" दाढ़ी वाले ने राक्षस से कहा।

"अच्छा, यही सही ! अगर इस बार वह मेरे चंगुल में फँस गया तो बच्चू को ऐसा मज़ा चखाऊँगा कि वही जानेगा। चलो, पहले इनका हाल देखना है !" यह कह कर राक्षस ने प्रदोष, निशीथ, राजा के नौकरों और दाढ़ी वाले वगैरह को एक रस्सी से बँधवाया और अपने साथ घसीट ले गया।

उदय छिपा छिपा यह सब देख रहा था। उसने राक्षस का पीछा किया। राक्षस थोड़ी दूर जाकर एक झाड़ी के पास रुक गया। वहाँ उसने गिद्ध का रूप धारण कर अपने विशाल पंख फटकारे तो वह झाड़ी छिन्न-भिन्न होकर हवा में उड़ गई और वहाँ एक दरवाजा दिखाई दिया। राक्षस ने उन सबको उस दरवाजे से अन्दर धकेल दिया। फिर दरवाजा बन्द करके झाड़ी पहले की तरह खड़ी कर दी और सरोवर के पास चला।

वहाँ जाकर उसने नौकरों को उन सब सजे-सजाए जुड़वों पर पहरा देने के लिए रख दिया और स्वयं सुहासिनी, सुभाषिणी और सुकेशिनी को उठा कर गिद्ध के रूप में उड़ गया।

[और भी है]





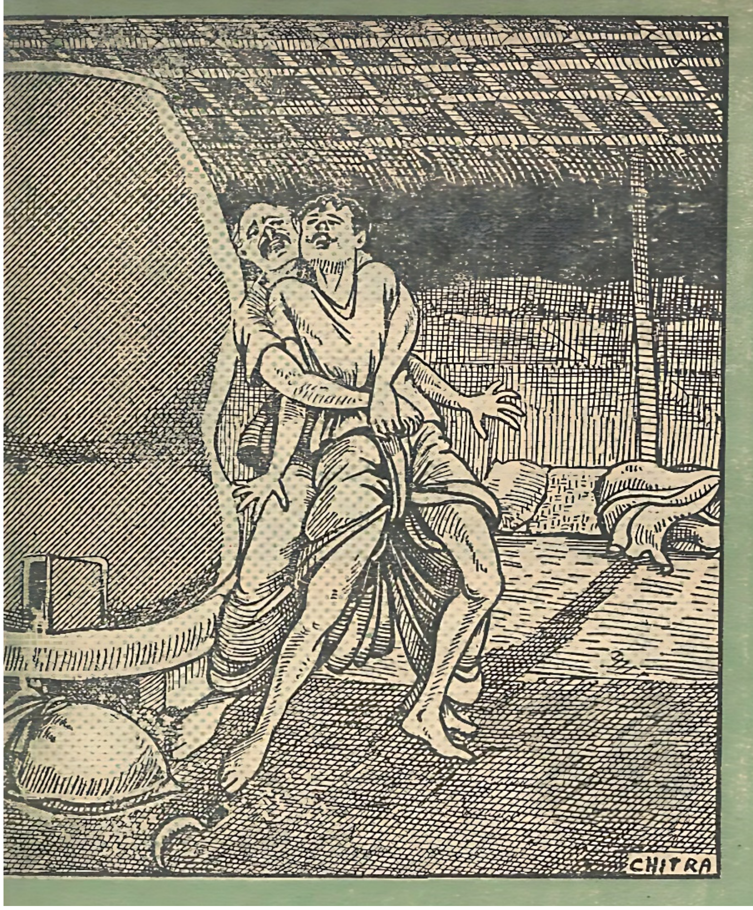
पिपराहा में समरसिंह नाम का एक राजपूत रहता था। समरसिंह में ज्यादा समझ न थी। लेकिन वह अपने को बहुत समझदार समझता था।

समरसिंह के खेत में ही एक झोंपड़ी थी जिस में वह अनाज से भरे बखार रखा करता था। इसलिए वह हमेशा उस झोंपड़ी में ही रात काटा करता था जिससे चोर अनाज न उठा ले जाएँ।

उसी गाँव में गोविन्द नाम का एक चोर रहता था। वह बराबर अनाज की चोरी किया करता था। अनाज के सिवा वह किसी चीज़ को छूता नहीं था। एक बोरा साथ लेकर रात के वक्त वह अनाज की चोरी करने चल पड़ता था। उसने इस तरह बहुत लोगों का अनाज चुराया था। लेकिन कभी पकड़ा नहीं गया। अब उसकी नजर समरसिंह के अनाज के बखार पर पड़ी। उसने सोचा कि किसी न किसी तरह उस में से अनाज चुरा लें।

आधी रात के वक्त जब सब लोग गाढ़ी नींद में डूबे थे, गोविन्द एक खाली बोरा बगल में दबा कर और बखार में छेद करने के लिए एक हँसिया साथ लेकर समरसिंह की झोंपड़ी में घुसा। हँसिया से बखार में छेद करके उसने बोरे में अनाज भर लिया और उसका मुँह बाँध कर कन्धे पर उठा लेने लगा। बेचारा समरसिंह जिसने दिन भर कड़ी मेहनत की थी, थका-माँदा सो रहा था। उसकी नींद टूटती नहीं, यदि ऐन मौके पर एक चींटा उसके कान में न घुस गया होता। लेकिन संयोग ऐसा हुआ कि वह जाग उठा और उसने बोरा उठाते हुए गोविन्द को देख लिया। समरसिंह ने बिजली की तरह दौड़ कर गोविन्द को पकड़ लिया।

अमृता सुहानी



और कोई होता तो गोविन्द को ठोंक-पीट कर दुरुस्त कर देता। फिर समरसिंह तो भारी बलवान था। चाहता तो गोविन्द की हड्डी-पसली तोड़ कर रख देता।

लेकिन उसने वैसा क्यों नहीं किया। बात यह थी कि वह कानून जानता था। उसने किसी भले मानुस से सुना था कि कसूरवार को सज़ा देने का काम सरकार का होता है। हर किसी को कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए।

इसके अलावा उसने किसी से यह भी सुना था कि माल सहित चोर को पकड़ लेने से उस पर आसानी से जुर्म साबित होता है; नहीं तो बड़ी मुश्किल होती है। इसलिए उसने सोचा-"मैंने इसको रङ्गे हाथ पकड़ लिया है। अब इसे चोरी के माल सहित कोतवाल के पास ले जाऊँगा। जो कुछ करना होगा वे ही करेंगे।" इसलिए उसने गोविन्द से कुछ भी कहा-सुना नहीं। सिर्फ़ बोला-"बोरा उठाओ और चलो कोतवाल के पास।"

गोविन्द चुपचाप बोरा उठा कर चलने लगा। समरसिंह उसके पीछे पीछे चला।

गोविंद समरसिंह जितना बलवान नहीं था। लेकिन बड़ा चालाक था। वह जानता था कि समरसिंह की अक्ल मोटी है। इसलिए वह सोचने लगा कि कैसे इसे चकमा दिया जाय?

आखिर कुछ सोच-विचार के बाद उसने भोली सी सूरत बना कर पूछा- "हुजूर ! आप मुझे कोतवाल के पास क्यों लिए जा रहे हैं ?"

"अरे ! तू निरा भोन्दू मालूम होता है ! चोरी के माल के साथ तुझे ले जाकर कोतवाल के हाथ में सौंप दूँगा। वे तुझे गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर देंगे। क्या तू इतना भी नहीं जानता ?" समरसिंह

ने जवाब दिया जैसे वही बुद्धिमान हो और बाकी सभी भोन्दू !

तब गोविन्द ने कहा-"तो हुजूर ! एक बात बताइए ! आप यह कैसे साबित करेंगे कि यह चोरी का माल है ? मैं कहूँगा-"मैं बिलकुल बेकसूर हूँ ! इन्होंने कहा-'मजदूरी दूँगा। बोरा उठा ले चलो !' इसलिए उठा लाया हूँ। मैंने चोरी नहीं की ! यह सुन कर वे मुझे छोड़ देंगे। फिर आप क्या करेंगे ?"

चोर की बातें सुन कर समरसिंह ने भी सोचा-"सच तो है !" उसने गोविन्द से पूछा-"तो मैं कैसे साबित कर सकता हूँ कि यह चोरी का माल है ?"

"इस में क्या रखा है हुजूर ? हँसिया कोतवाल जी को दिखा दीजिए और कहिए कि इसने इसी औजार से बखार में छेद किया था !" गोविन्द ने बताया। समरसिंह ने सोचा-"बात तो ठीक है!"

"तो हँसिया कहाँ है ?" उसने पूछा। "अरे-रे ! हँसिया तो वहीं भूल आया। जरा ठहरिए ! मैं अभी उसे ले आता हूँ !" यह कह गोविन्द ने अनाज का बोरा नीचे रख दिया और जल्दी से चला गया।



गोविन्द की राह देखते हुए समरसिंह सबेरे तक वहीं बैठा रहा। उसे पूरी उम्मीद थी कि वह जल्दी लौट कर आ जाएगा। यह उसकी बेवकूफी थी। गोविन्द तो चकमा देकर भाग गया था। वह अब क्यों लौटने लगा ? जब वह नहीं आया तब समरसिंह गुस्से से भर गया। उसने सोचा-"चलो, कोतवाल को यह बोरा दिखाऊँगा और सारा किस्सा सुना दूँगा !" लेकिन वह कानून जानता था। चोर के बिना कैसे साबित होता कि यह चोरी का माल है ? इसलिए उसने वह कोशिश छोड़ दी। बोरा सिर पर रखा और पछताते हुए घर की राह ली।

इस चोरी को छः महीने बीत गए। एक दिन गोविन्द को मालूम हुआ कि समरसिंह गाँव में नहीं है और दस दिन तक लौटने वाला भी नहीं। इसलिए वह आधी रात को उधर गया और बखार में छेद करके बोरा भरने लगा। लेकिन उसके दुर्भाग्य से समरसिंह पहले ही लौट आया था। उसने जल्दी जल्दी झोंपड़ी में जाकर देखा तो गोविन्द बोरे में अनाज भर कर बोरा उठा रहा था।

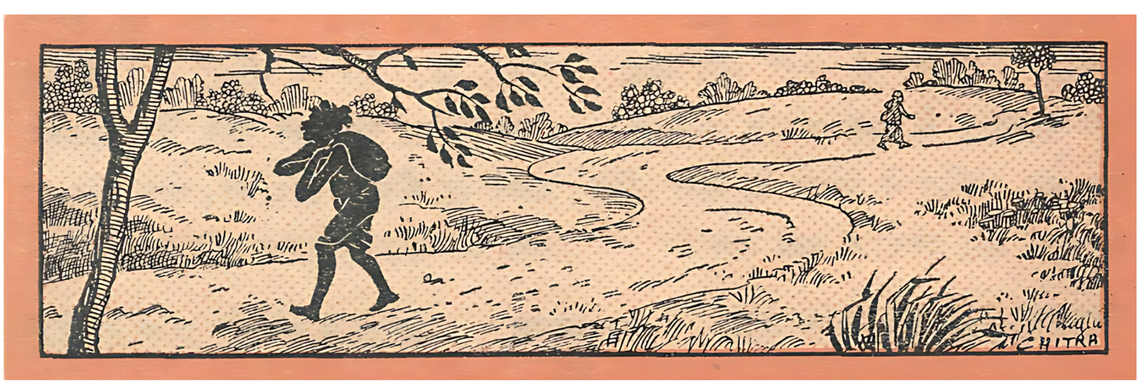
"बदमाश ! तू फिर आ गया !" यह कह कर उसने चोर को पकड़ लिया और उसी तरह बोरे सहित कोतवाल के पास ले चला।

आधी दूर जाने के बाद गोविन्द सहसा रुक गया, जैसे कोई चीज़ भूल गया हो और बोला-"हाय ! मैं कैसा बेवकूफ़ हूँ ! फिर मैं हँसिया भूल आया। हुजूर ! आप जरा ठहरिए ! मैं अभी दौड़ कर हँसिया ले आता हूँ।" यह कह कर वह बोरा नीचे रखने लगा।

तब समरसिंह ने कहा-"पिछली बार भी तू ने मुझे धोखा दिया। मैं भोन्दू नहीं हूँ जो फिर तुझ पर विश्वास कर लूँ। तू बोरा उठाए यहीं खड़ा रह। मैं जाकर हँसिया ले आता हूँ।"

यह कह कर उसने गोविन्द को बोरे सहित वहीं छोड़ दिया और दौड़ा-दौड़ा घर गया।

उसके जाते ही गोविन्द ने सोचा-"यह तो और भी अच्छा रहा ! अब की तो मुझे अनाज भी मिल गया !" बस, खुशी खुशी बोरा उठा कर चम्पत हो गया। इस तरह गोविन्द ने दोनों बार समरसिंह को बेवकूफ़ बनाया। लेकिन इस से क्या ? समरसिंह का अब भी विश्वास है कि वह बड़ा समझदार है।





मद्रास में सिङ्गारी नाम का एक टैक्सी वाला रहता है। उसमें दो बुराइयाँ हैं। एक तो यह कि वह मीटर के मुताबिक भाड़ा नहीं लेता। झगड़ा-फिसाद करके किसी न किसी तरह एकाध रुपया ज्यादा ले ही लेता है।

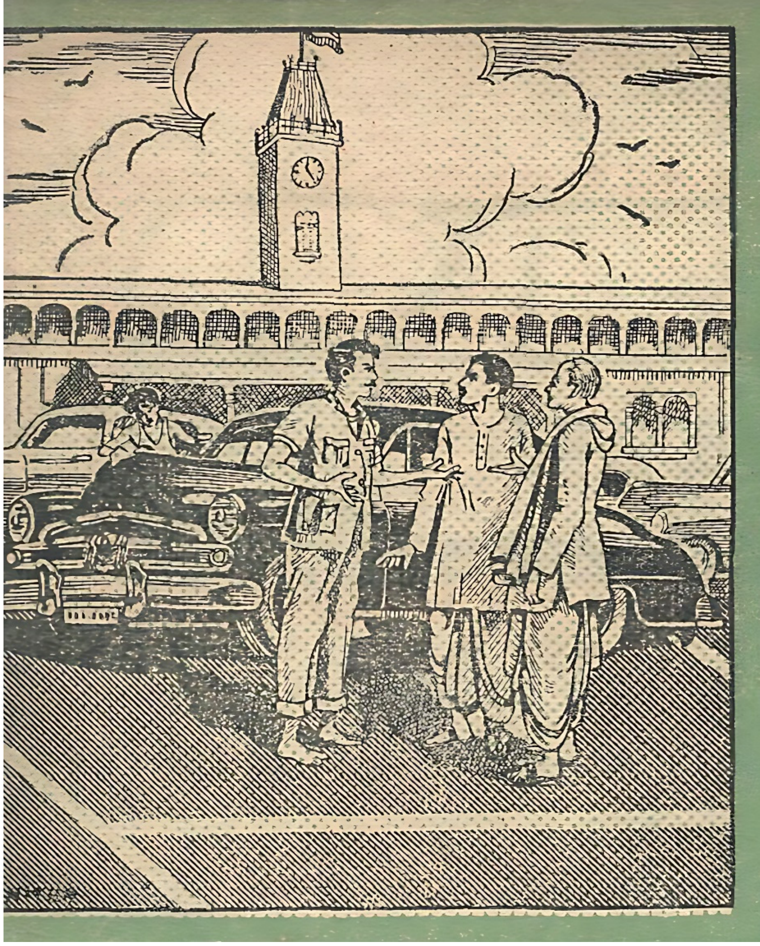
दूसरी यह कि वह लोगों का सारा सामान तुरन्त नहीं उतारता। एक न एक सामान टैक्सी में ही रख लेता है। अगर लोग होशियार हुए और सामान गिनने लगे तो वह चुपके से सामान दे देता है और कहता है कि भूल से टैक्सी में ही रह गया ! लेकिन वे ज़रा लापरवाह हुए तो वह उस सामान को लेकर चम्पत हो जाता है।

एक बार विजयवाडा से ईश्वरराव नाम के महाशय सपरिवार सफर करते आए और मद्रास के सेन्ट्रल स्टेशन में उतरे। उनके बहनोई श्री वेङ्कटराव एक वकील थे और मद्रास के ट्रिप्लिकेन में रहते थे।

ईश्वरराव को देखते ही सिङ्गारी "टैक्सी, बाबूजी !" कहते आया और उनकी इजाजत लिए बिना ही सारा सामान गाड़ी में चढ़ा कर बोला- "आइए माँ जी ! बैठ जाइए !" सबके चढ़ जाने के बाद उसने पूछा- "किधर जाना है बाबूजी !" तब ईश्वरराव ने वेङ्कटराव का पता दिया।

टैक्सी ज्यों ही वेङ्कटराव के घर के सामने रुकी त्यों ही सब लोग उतर कर अन्दर चले गए। घर वाले मेहमानों की कुशल पूछ ही रहे थे कि सिङ्गारी ने सामान अन्दर पहुँचा दिया और अपना भाड़ा माँगा। ईश्वरराव मीटर के मुताबिक भाड़ा देने

सुधीर कुमार



लगे तो सिङ्गारी झल्ला उठा और कहने लगा-"यहाँ से सवारी मुझे कैसे मिलेगी ? आप मीटर के मुताबिक भाड़ा देंगे तो काम कैसे चलेगा ?" ईश्वरराव झगड़ा करना नहीं चाहते थे; इसलिए उन्होंने उसे और एक रुपया दे दिया। सिङ्गारी बड़बड़ाता चला गया।

खा-पी चुकने के बाद ईश्वरराव अपने सामान देखने लगे। तब वेङ्कटराव ने पूछा-"अजी ! क्या खोज रहे हैं ?" "नए जूते कागज़ के तख्तों की पेटी में थे ! वह पेटी नहीं दिखाई दे रही है ! परसों ही हैदराबाद से खरीद लाया था !" ईश्वरराव ने जवाब दिया।

"रेल के डिब्बे से तो मैंने ही सामान उतारे थे ! कहीं टैक्सी में तो नहीं रह गए !" उनकी पत्नी ने कहा।

शाम को स्टेशन जाकर टैक्सी वाले से पूछिए। टैक्सी में कोई चीज़ भूल जाने पर वे लोग हिफाज़त से रखते हैं और लौटा देते हैं।" वेङ्कटराव ने कहा।

शाम को दोनों आदमी स्टेशन गए। सिङ्गारी को देखते ही वेङ्कटराव ने कहा-"भई ! सबेरे टैक्सी में नए जूतों का एक जोड़ा रह गया था। तुमने तो देखा ही होगा !"

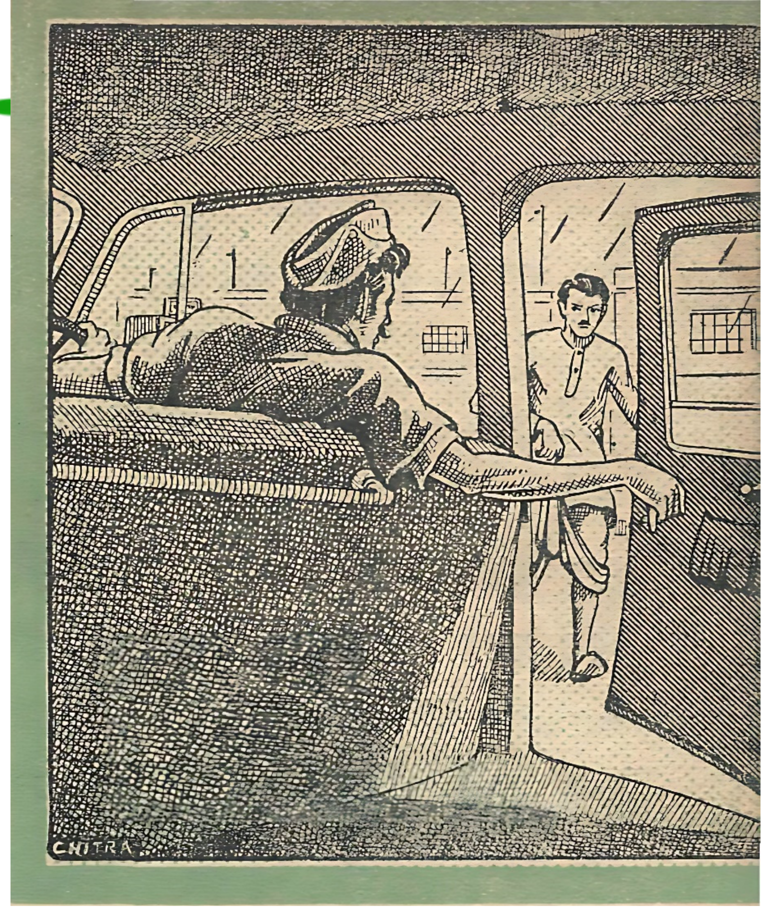
लेकिन सिङ्गारी ने साफ इनकार कर दिया। "नहीं ! मैं तो कुछ नहीं जानता; माँ जी ने खुद टैक्सी में देख लिया था।" उसने झूठ बोल दिया।

ईश्वरराव ने फिर एक बार टैक्सी में चारों तरफ देख लिया। लेकिन जूतों की पेटी वहाँ कहाँ थी ? सिङ्गारी बेवकूफ तो नहीं था जो पेटी को टैक्सी में ही रखता ?

वेङ्कटराव के मन में हुआ कि पुलिस में रपट कर दें। लेकिन ईश्वरराव ने कहा-"जाने भी दो ! हमारी लापरवाही का फल है। भूल हमारी थी। जूतों के जोड़े का दाम ही क्या होता है ? बेकार बात का बतङ्गड़ क्यों बनाया जाए !" दोनों चुपचाप लौट पड़े।

ईश्वरराव मद्रास में अबकी बार एक हफ्ते तक रह कर विजयवाडा लौट गए। उसके बाद एक रात को वेङ्कटराव एक दोस्त के घर दावत में गए। लौटते लौटते रात बहुत हो गई। कोई सवारी आसपास नहीं दिखाई दी। पैदल जाने में बहुत दूर चलना पड़ता। वे बड़ी मुश्किल में पड़े हुए थे और सोच रहे थे कि क्या किया जाय ? इतने में एक टैक्सी आई और उन्हें देख कर रुक गई।

"चढ़िए बाबूजी !" टैक्सीवाले ने कहा। रात बहुत हो गई थी। पानी भी बरसने लगा था। इसलिए वेङ्कटराव ने सोचा "जान बच गई" और टैक्सी में बैठ गए। ड्राइवर को पता बताया।



अन्धेरे में पहले ड्राइवर का चेहरा दिखाई नहीं देता था। लेकिन थोड़ी दूर जाने के बाद वेङ्कटराव को मालूम हो गया कि यह वही आदमी है जिसने जूते गायब कर दिए थे।

उन्होंने सोचा-"आज इसे मजा चखाना चाहिए। वे जानते थे कि वह सब लोगों की आँख में धूल झोंकता है। इसलिए उन्होंने उसकी आँख में धूल झोङ्कने का एक अच्छा उपाय सोचा।

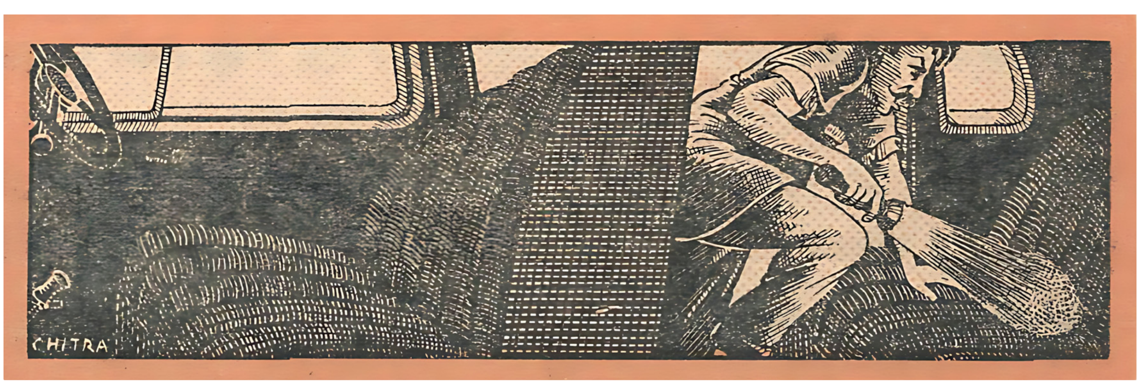
घर से एक फर्लांग के फासले पर ही उन्होंने टैक्सी रुकवाई और कहा-"ड्राइवर !

जरा बत्ती तो जलाना ! मेरा बटुआ (पर्स) गाड़ी में कहीं गिर गया है।

सिङ्गारी के मन में बिजली-सी कौंध गई। उसने बत्ती नहीं जलाई। क्योंकि बटुए का नाम सुनते ही उसकी नीयत बिगड़ गई थी। उसने सोचा कि किसी न किसी उपाय से उस बटुए को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। इसके लिए उसे एक तदबीर भी सूझ गई। उसने सोचा- "इसे चकमा देना कौन बड़ी बात है ?" उसने झट कहा-"बाबूजी ! बत्ती तो काम नहीं करती। मेरे पास दियासलाई भी नहीं है। आप जाइए और उस सड़क की मोड- वाली पान-बीड़ी की दूकान पर एक दिया-सलाई खरीद लाइए। मैं जाकर खुद खरीद ला देता। लेकिन एक बार रोकने पर मोटर जल्दी स्टार्ट नहीं होती है। इसलिए आप ही जाकर दिया-सलाई ले आइए !" इतना ही नहीं, उसने अपनी जेब से एक आना निकाल कर उन्हें दिया और कहा- "आपका बटुआ तो गाड़ी में है। इसलिए आपके पास पैसे नहीं होंगे। लीजिए यह एक आना ! पीछे दे दीजिएगा।"

वेङ्कटराव उतर गए और दूकान की ओर चलने लगे। उन्होंने जो सोचा था वही हुआ। उनके उतर जाते ही टैक्सी आँधी की चाल से भाग खड़ी हुई। बहुत दूर जाने के बाद सिङ्गारी ने गाड़ी रोक दी और बत्ती जला कर बटुए की खोज-बीन शुरू कर दी।

लेकिन बटुआ उस में हो भी तो ! बटुए के लालच में उसने भाड़ा भी गँवा दिया। जेब से एक आना भी खोया। बेचारा खूब छका। मन-ही-मन कट कर रह गया।





किसी गाँव में छुनिया नाम की एक गरीबिन रहती थी। उसके जोगू और नागू नाम के दो लड़के थे। बचपन में ही पिता के मर जाने के कारण माँ को ही उनके पालन-पोषण का सारा भार उठाना पड़ा।

जिस गाँव में वे रहते थे वह बहुत छोटा था। उसके नज़दीक ही एक जङ्गल था और दूर से पहाड़ियाँ दिखाई देती थीं। छुनिया सबेरे से शाम तक जङ्गलों में ही घूमती-फिरती और जड़ी-बूटियाँ, दवाइयों में काम आने वाली जङ्गली पत्तियाँ वगैरह चुन कर ले आती और उस गाँव के वैद्य महाराज को दे देती थी। इस के बदले वैद्य जी से उसे जो कुछ मिलता था उसी से घर का काम चला लेती थी।

जोगू और नागू जब सोलह और चौदह साल के हो गए, तब जड़ी-बूटियाँ खोजने में वे भी माँ की मदद करने लगे।

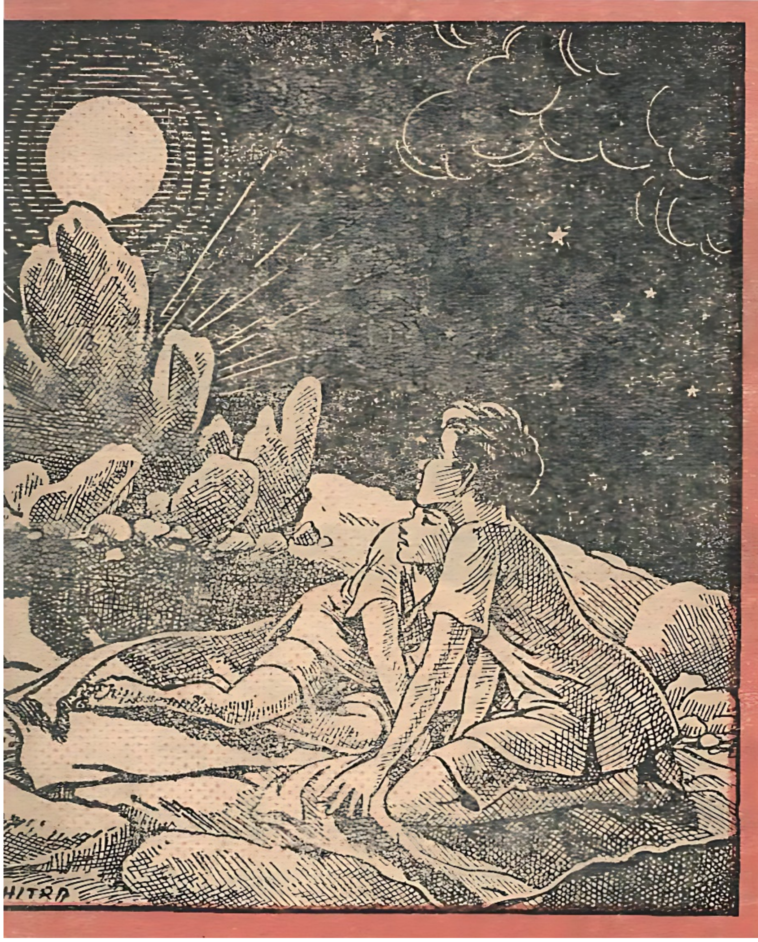
एक दिन वैद्य ने उनसे एक जड़ी लाने को कहा और उसके लक्षण भी बता दिए ! जोगू और नागू ने उस दिन सारा जङ्गल छान डाला। लेकिन वह जड़ी उन्हें कहीं न मिली।

तब उनकी माँ ने बताया कि वह जड़ी पहाड़ियों पर मिलती है। दूसरे दिन दोनों भाई पहाड़ियों की ओर चल पड़े। दोपहर होते होते वे पहाड़ों पर जा पहुँचे।

जलती हुई धूप में, तवे की तरह तपती हुई चट्टानों पर चलते हुए वे उस जड़ी को ढूँढ़ने लगे। शाम होते होते उन्होंने दो थैलियों में भर कर वह जड़ी जमा कर ली।

जोगू ने पसीना पोंछ कर एक लम्बी साँस ली और कहा-"नागू! अब हम लौटें !" नागू एक चट्टान के सहारे लेटा हुआ "आह ! ओह" कर रहा था। "आज रात यहीं क्यों न सो जाएँ?" उसने कहा।

बीरेन्द्र नारायण



यह सुनते ही जोगू एक बार सिहर उठा। "यहाँ रात कैसे काटेंगे ! साँप-बिच्छू ! कीड़े-मकोड़े ! उँह; उठो, चलें घर।" उसने गुस्से के साथ कहा।

नागू तब तक झपकी लेने लगा था। "उहूँ ! मुझे नींद आ रही है। थोड़ी देर के बाद चलेंगे।" उसने नींद में झपकी भरते हुए कहा।

जोगू अपने भाई को बहुत प्यार करता था। उसकी थकावट देख कर उसे दया आ गई। "अच्छा ! थोड़ी देर सो लें।" यह सोच कर वह भी पास की चट्टान पर लेट गया।

दुनियाँ सो जाती है। लेकिन समय कभी सोता नहीं। समय को आराम करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। क्योंकि थकावट किस चिड़िया का नाम है, यह वह नहीं जानता। वह किसी के लिए ठहरता नहीं। अपनी राह आप चलता जाता।

सूरज डूब गया। चाँद निकल आया। उसकी रोशनी धरती पर एक उजले चादर के समान बिछ गई। दिन भर के थके तो थे ही; इसलिए जोगू और नागू झपकते ही गहरी नींद में होश खो बैठे। सफेद चाँदनी, ठण्डी-ठण्डी हवा और रात की स्तब्ध नीरवता, भला उन्हें गाढ़ी नींद क्यों न आती ?

सहसा कबूतरों के पङ्ख फड़फड़ाने की सी मीठी आवाज़। नागू की नींद टूट गई और वह चौंक कर उठा। माँ की गोदी में लेटे बिना उसे नींद नहीं आती थी। बड़ा डरपोक था। अब वह "भैया ! भैया!" कह कर जोगू की बाँह नोचने लगा। बस, जोगू भी जाग गया।

"चाँदनी भी आ गई ! नागू !" जोगू ने उठ कर कहा। उसे डर लगने लगा कि

अब रात यहीं काटनी पड़ेगी। "सुनो न! कैसी आवाज़ आ रही है ! कहीं बाघ-भालू न हों!" नागू ने कहा।

"बाघ भालू तो इन पहाड़ियों पर नहीं रहते। बन्दर-वन्दर होंगे।" जोगू ने डरते हुए जवाब दिया। दोनों ने उस चाँदनी में नज़र दौड़ाई।

इतने में सामने की एक बड़ी चट्टान के पीछे से आवाज़ हुई। नागू तुरन्त अपने भैया के गले से लिपट कर "भैया ! भैया!" चिल्लाने लगा। उसी समय उस चट्टान के पीछे से मीठी हँसी गूँजने लगी।

जोगू का भय धीरे-धीरे दूर होने लगा उसने सिर उठा कर उस ओर देखा। नागू का डर भी कम हो गया। उसने भी आँखें खोलीं। उन दोनों की नज़रें उस चट्टान पर जाकर ठहर गईं, जहाँ से हँसी की आवाज़ आ रही थी और सुन्दर मुखड़े दिखाई दे रहे थे।

दूसरे ही क्षण उस चट्टान की आड़ से अनेक गन्धर्व-कुमारियाँ निकल कर उनके पास आ गईं। उनके सुन्दर चेहरे और मधुर हँसी देख-सुन कर जोगू और नागू का सारा भय दूर हो गया।



वे दोनों उठ कर खड़े हो गए। अब गन्धर्व-कुमारियाँ उनको घेर कर नृत्य करने लगीं। उनका नाच देख कर दोनों भाई खुशी से उछलने और तालियाँ बजाने लगे। "कितनी सुन्दर हैं ये लड़कियाँ ?" जोगू ने कहा। "कितना अच्छा नाच रहीं हैं ?" नागू ने कहा। बस, उन कुमारियों ने नाचना छोड़ दिया। गाना भी रुक गया। वे दोनों भाइयों को घेर कर खड़ी हो गईं और सवाल-जवाब करने लगीं। "अरे! हमारे साथ चलोगे? बहुत मन लगेगा



वहाँ !" एक ने कहा। "ज़रूर चलेंगे। किधर से जाना है?" नागू ने पूछा। जोगू ने भाई को मना किया कि उतावली न दिखाओ।

"देखो, वही हमारे गाँव की राह है।" एक गन्धर्व-कुमारी ने उँगली से इशारा करके दिखाया।

जोगू और नागू ने उधर मुड़ कर देखा। कैसा सुहावना दृश्य था ! उनकी आँखें चौंधिया गई। "अरे! यह तो इन्द्र-धनुष जैसा लगता है।" जोगू ने कहा।

"नहीं, वह इन्द्र-धनुष नहीं है। वह हमारे गाँव जाने के लिए पहाड़ों पर से पुल बना हुआ है।" गन्धर्व-कुमारी ने कहा। "चलें हम भी !" नागू ने भाई से पूछा। लेकिन अब भी जोगू ज़रा हिचकिचाने लगा।

तब उन कुमारियों ने जो उनकी बातें सुन रही थीं, धीरे से उनका हाथ पकड़ लिया और इन्द्र-धनुष के से उस पुल पर से उन्हें अपने गाँव ले गईं।

दोनों भाइयों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने आज तक परियों के बारे में जो अनोखी बातें सुनी थीं, सपनों में जो अजीब दृश्य देखे थे, वे सब उन्हें गन्धर्वों के गाँव में प्रत्यक्ष दिखाई दिए। दिन बीतते गए। हफ्ते, महीने और साल बीतते गए। लेकिन न उन्हें अपने घर की याद आई और न माँ की। गन्धर्व-कुमारियों के सुन्दर चेहरे देख कर, उनकी मीठी बातें सुन कर वे सब कुछ भूल गए।

एक दिन की बात है, जोगू और नागू गन्धर्व-लोक की पहाड़ियों पर घूम रहे थे। अचानक उनकी नज़र एक झाड़ी की बगल में उगे हुए एक पौधे पर पड़ गई। नागू ने कहा- 'भैया ! मुझे ऐसा लगता है कि यह पौधा हमने पहले कहीं देखा है।"

तुरन्त जोगू को सब कुछ याद आ गया।

उसी पौधे की जड़ियों के लिए वह अपने भाई के साथ घर से निकला था। उसको ऐसा लगा जैसे उनकी माँ के साथ पहाड़ियों पर जड़ी-बूटियाँ खोजने आना कल की बात हो। उसने कहा-"न जाने, माँ क्या सोच रही होगी मन में ? हमारे जल्दी न लौटने के कारण फिक्र तो लगाए नहीं बैठी है ?" यह ख्याल आते ही दोनों के मन में बड़ी पीडा हुई। वे सीधे लौट कर गन्धर्व-कुमारियों के पास गए और बोले-"हमें यहाँ आए कितने दिन हो गए ?" तब उन कुमारियों ने हँस कर कहा-"हमारे यहाँ तुम्हारी दुनिया की तरह समय मापने के लिए घड़ियाँ वगैरह नहीं हैं।"

"हम अपने घर लौट जाना चाहते हैं।" दोनों भाइयों ने एक साथ कहा।

"क्यों ? यहाँ मन नहीं लगता क्या ?" उन कुमारियों ने पूछा।

"मन तो खूब लगता है। लेकिन हम घर से निकले थे जड़ियों की खोज में। तुम लोगों से मुलाकात हुई और हम जड़ी की बात ही भूल गए और यहाँ आकर मौज करने लगे। अब हमें जल्दी जाना है।" भाइयों ने जवाब दिया।



गन्धर्व-कुमारियों ने उन्हें बहुत समझाया- बुझाया। लेकिन दोनों भाइयों ने एक न सुनी। तब उन कुमारियों ने दोनों को इन्द्र-धनुष जैसे पुल की राह इस दुनिया में लाकर छोड़ दिया। शाम होते होते जोगू और नागू जड़ियों से भरी थैलियाँ लेकर जल्दी जल्दी चल कर घर पहुँचे।

तब तक उनका घर इतना बदल गया था कि पहचाना नहीं जाता था। छप्पर टूट पड़ने को था। किवाड़ों के तख्ते सड़ गए थे और छूते ही टूक-टूक होकर गिर

पड़ते थे। यह देख कर वे हैरत में पड़ गए और किवाड़ खटखटाने लगे ! "कौन हो भैया !" काँपती हुई आवाज़ में यह कहते हुए एक बुढ़िया ने दरवाज़ा खोला। उसने पल भर दोनों की ओर गौर से देखा और चीख पड़ी-"तुम ! मेरे राजा बेटे ! बारह साल बीत गए। लेकिन तुम दोनों जैसे के तैसे रह गए !" यह कह कर उसने दोनों को गले लगा लिया।

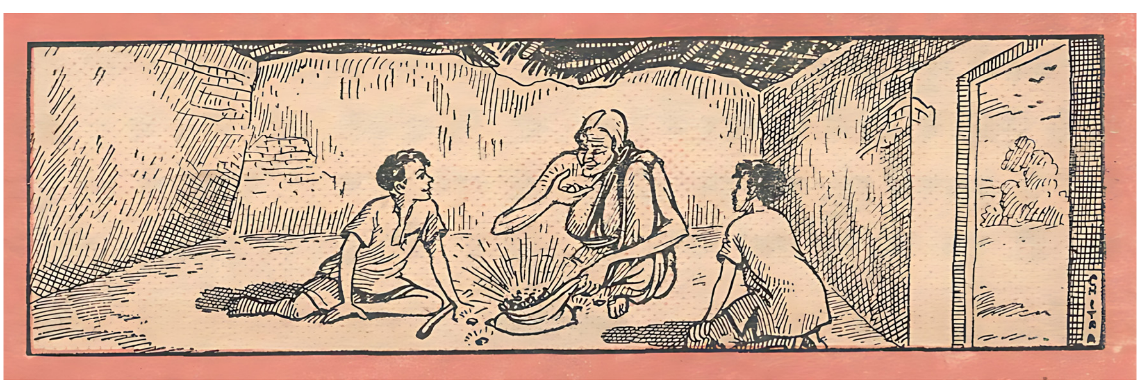
जोगू और नागू सिसक सिसक कर रोने लगे। उनको जान पड़ा कि गन्धर्व-कुमारियों के फन्दे में पड़ कर उन्होंने माँ को बहुत दुख पहुँचाया।

"इन थैलियों में जड़ी-बूटियाँ हैं ! बहुत सी ले आए हैं !" यह कह कर उन्होंने थैलियाँ माँ को दे दीं।

इतने साल बाद ये जड़ी-बूटियाँ किस काम आएँगी बेटा ! तुम लोग लौट आए। बस ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" यह कह कर उनकी माँ ने थैलियों को खोल कर देखा। आश्चर्य ! उसमें चमाचम चमकते हुए मोती और जगमगाते हुए हीरे भरे हुए थे। अचरज के मारे उसने एक मुठ्ठी भर हीरे-मोती बाहर निकाल लिए। सूखी हुई हर जड़ी में, जड़ी की हर पत्ती में हीरे-मोती जड़े हुए थे। जोगू और नागू भी जो अब तक यह नहीं जानते थे, दङ्ग रह गए।

बुढ़िया की आखों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने दोनों लड़कों को गले लगा लिया और बार बार चूमने लगी।

जोगू और नागू ने सोचा कि माँ हीरे-मोती देख कर खुश हो रही है। उन बेचारों को क्या मालूम कि माँ उससे भी ज्यादा इसलिए खुश हो रही है कि उसके लाल सही-सलामत लौट आए हैं।





किसान रामू के कुत्ते का नाम शेर था। वह उसके घर का रखवाला था। साहस में, विश्वास-पात्रता में और फुर्ती में उसकी बराबरी करने वाला दूसरा कोई कुत्ता वहाँ न था। एक दिन शेर सबेरे उठ कर नजदीक के जङ्गल में घूमने चला गया। एक झाड़ी की आड़ में छिप कर बैठे हुए एक भेड़िया और एक सियार उसे दिखाई दिए।

दूर से ही उन्हें देख कर शेर उलटे पाँव लौट पड़ा। डर से नहीं। उनकी निगाह, उनके बैठने का ढङ्ग वगैरह देख कर शेर को बहुत नफरत हो गई थी। लेकिन सियार ने शेर को देख लिया और दौड़ कर पुकारा- "भैया ! ठहरो ! तुम से कुछ बातें करनी हैं।" शेर लौटा और उस जगह गया जहाँ भेड़िया और सियार बैठे हुए थे। सियार ने दुम छटकार कर और कान हिला कर कहना शुरू किया-"हम दोनों अपने परिवार के मामलों पर चर्चा कर रहे थे। तुमको तो मालूम ही है कि हम सभी भाई-बन्धु हैं। मुद्दत पहले की बात है कि तुम्हारे कुनबे वाले आदमियों से जान-पहचान करके, गाँवों और शहरों में जा बसे। लेकिन भेड़िया और मेरे कुनबे वाले जङ्गलों में ही रह गए। जाड़े के कारण भेड़िया भाइयों ने अपने बदन पर रोएँ बढ़ा लिए और हमारे लोग गढ़े खोद कर रहने लगे। खैर, मेरे कहने का मतलब यह है कि हम सभी भाई-बन्धु हैं। हम सबका बहुत नजदीकी रिश्ता है।" सियार ने समझाया।

भेड़िए ने अपनी झबरीली दुम हिला कर स्वीकृति जताई। शेर को भी सियार की बातें सच्ची मालूम हुईं। "भाइयो, तो आप दोनों को मेरे घर एक बार आना पड़ेगा।" उसने अपने भाई-बन्धुओं को न्योता दिया।

कुमारी श्यामला



उस दिन शाम को अन्धेरा होते ही भेड़िया और सियार शेर के घर आ गए। मालिक ने उसे जो खाना दिया था, शेर ने उसके तीन हिस्से किए और आए बन्धुओं की खातिर की। खाने के बाद थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं और अन्त में धन्यवाद देकर भाई-बन्धु अपनी राह चले गए।

सबेरा हुआ। शेर अपने मालिक के घर के सामने चहल-कदमी कर रहा था। सहसा पड़ोस की कोई औरत छाती पीट कर चिल्ला उठी। शेर गया देखने कि वहाँ क्या हुआ ? मालूम हुआ कि उस औरत के बरामदे से दो मुर्गियाँ गायब हो गईं। बाड़ी में बँधी हुई भेड़ की सिर्फ़ हड्डियाँ बच रह गईं।

शेर को अचरज हुआ। वह सोचने लगा-"मुर्गियों और भेड़ पर किसने दाँत चलाए ?" लेकिन वह कोई निश्चय न कर सका। क्योंकि रात को भेड़िया और सियार के सिवा और कोई वहाँ आया नहीं था। फिर वे दोनों उसके भाई-बन्धु थे; उन पर तो शक किया नहीं जा सकता था। शेर भारी चिन्ता में पड़ गया कि किस बदमाश ने ऐसा बेज़ा काम किया।

धीरे-धीरे दिन बीत चला और शाम हो गई। भेड़िया और सियार दोनों फिर शेर के घर पहुँचे। शेर ने उसी तरह खातिर-वातिर की। उसके बाद उसने नम्रता-पूर्वक कहा-"कल से आप लोग दिन में ही आया करें।" यह सुन कर दोनों बन्धु एक स्वर में बोल उठे-"नहीं भैया ! दिन में इधर-उधर जाने की हमें फुरसत कहाँ ?"

सवेरा हुआ। आज शेर के मालिक के घर में भी कुहराम मच गया। तीन बतखें और एक बकरी गायब हो गईं थी। बतखों के पर हवा में इधर-उधर उड़ रहे थे और बकरी की हड्डियाँ वहाँ बिखरी पड़ीं थीं।

अब शेर को सारा भेद मालूम हो गया। वह अपनी नासमझी पर बहुत पछताया। उसे ऐसा लगा जैसे उसने अपने मालिक के साथ भारी विश्वास घात किया हो। शाम होते ही वह बड़ी उतावली से भेड़िया और सियार की राह देखने लगा। ठीक समय पर दोनों आए और उसने रोज की तरह उनकी खातिर की। अन्त में जब उसके कपटी भाई-बन्धु धन्यवाद देकर चले तो चुपके से वह उनका पीछा करने लगा।



थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि भेड़िए ने पड़ोस की बाड़ी में घुस कर एक भेड़ को दबोच लिया है। यह देख कर शेर के गुस्से का ठिकाना न रहा। वह गुर्रा कर उछला और भेड़िए पर टूट पड़ा।

भेड़िया मुँह बाए खड़ा रह गया। बेचारी भेड़ की जान बच गई।

इधर सियार नजदीक ही दो मुर्गों को चट कर जाने की तैयारी में था कि यह शोर सुन कर दौड़ा आया और बोला-"छिः छि:! भेड़िए ने हमारे खानदान की इज्जत खाक में मिला दी। कैसा अन्याय है ! कैसा अन्याय!" यों उसने अनेक प्रकार से अपना अफसोस जाहिर किया।

शेर गुस्से से जल रहा था। सियार की बातें सुन कर ऐसा लगा जैसे कोई जले पर नमक छिड़क रहा हो। उसने उन दोनों से कहा-"भाई-बन्धु का रिश्ता जोड़ कर तुम दोनों ने मुझे कैसा चकमा दिया ! तुम दोनों बड़े धूर्त और दुष्ट हो। हम में सिर्फ देखने भर की एकता है। हमारे स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। अबकी बार छोड़ देता हूँ ! जाओ ! फिर कभी भूल कर भी इधर पाँव रखा तो बोटियाँ उड़ा दूँगा।" दोनों भाई-बन्धु दुम दबा कर ऐसे भागे कि फिर पीछे न देखा। जङ्गल में जाकर ही दम लिया।



आसाम का रामपुर शहर वाणिज्य-व्यापार के लिए बहुत मशहूर था। वहाँ के सबसे बड़े सौदागर का नाम था दुर्गासिंह।

देश-देश से अनेक व्यापारी तरह तरह की चीजें लेकर उस शहर में आया करते थे। दुर्गासिंह शहर का सबसे बड़ा व्यापारी था। इसलिए उससे हर किसी को कुछ न कुछ ताल्लुक रखना ही पड़ता था।

एक दिन याङ्ग नामक चीन का एक व्यापारी दुर्गासिंह के घर आया। उसने बेश-कीमती रेशमी कपड़े, आइने और तरह तरह के खिलौने लाकर दुर्गासिंह को दिखाए। उसने कहा कि ये चीजें देकर वह उनके बदले दुर्गासिंह से कुछ दूसरी चीजें ले जाएगा। इस तरह सौदा तय करने के बाद याङ्ग ने अपनी थैली में से एक बोतल निकाली और कहा-"यह बोतल तो मैं नगद दाम पर ही बेचूँगा। इस में ऐसी दवा है जो सब तरह की बीमारियाँ दूर कर देती है।"

दुर्गासिंह बूढ़ा हो चला था। उसकी कमर में कभी कभी ऐसा दर्द हो जाया करता था कि वह बहुत परेशान हो जाता।

इसलिए मुँह माँगे दाम पर उसने चीनी व्यापारी से वह बोतल खरीद ली। उस सफेद बोतल में जो लाल दवा थी, उसको कमर पर मलते ही सारा दर्द रफू चक्कर हो गया। दुर्गासिंह को बड़ी खुशी हुई। उसने याङ्ग की बहुत खातिर की और उसे एक व्यापारी ही नहीं, बल्कि अपने दिली दोस्त की तरह मान कर देख-भाल की।

याङ्ग करीब एक महीने तक वहीं रह गया। दुर्गासिंह में और उसमें अब गहरी छनने लगी। दुर्गासिंह के लड़के प्रसादसिंह को उसने अपने देश की अजीब अजीब बातें बताईं। इतना ही नहीं; उसने बाप-

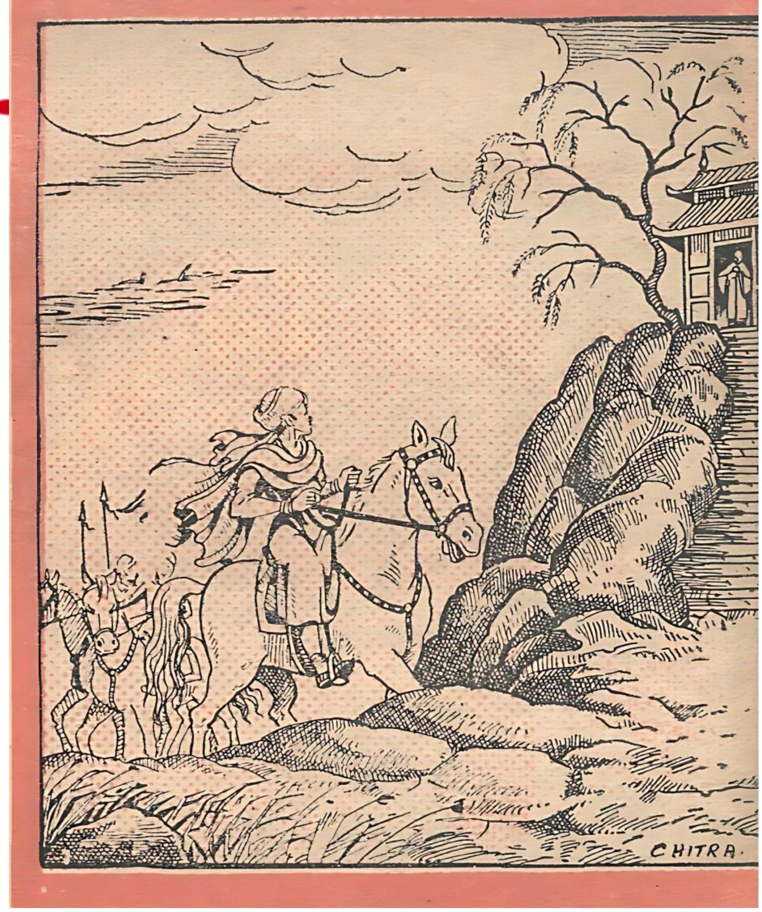
राधाकिशन

बेटे से आग्रह किया कि वे दोनों एक बार चीन ज़रूर आवें और चाटुङ्ग शहर में उसके घर मेहमान बनें।

आखिर याङ्ग अपने देश चला गया। इसके कुछ दिन बाद दुर्गासिंह की वह लाल दवा चुक गई। उसकी कमर का दर्द फिर इतना बढ़ गया कि दुर्गासिंह उठ बैठ भी न सकता था। दिन-रात उस भयङ्कर पीडा से कराहता रहता था।

पिता की यह हालत देख कर प्रसाद सिंह को बहुत दुख हुआ। वह जानता था कि थोड़ी सी लाल दवा कहीं मिले तो उसके पिता का स्वास्थ्य सुधर जाएगा। लेकिन उस दवा के लिए चीन तक कौन जाता ?

उन दिनों दूसरे देशों की यात्रा करना बड़े जोखिम का काम था। घने जङ्गल, खूँखार जानवर, लुटेरों, और भी अनेक खतरों का सामना करना पड़ता था। इसलिए दुर्गासिंह को अपने लड़के का चीन जाना पहले मञ्जूर न हुआ। लेकिन बहुत दबाव डालने पर मान गया। चार विश्वास पात्र और साहसी नौकरों को साथ लेकर, अनेक विघ्नों पर विजय पाते हुए प्रसादसिंह अन्त में सकुशल



चाटुङ्ग शहर पहुँचा। वहाँ याङ्ग ने उसकी बहुत खातिर की और प्रेम से उसके पिता का हाल-चाल पूछा।

तब प्रसादसिंह ने अपनी यात्रा का कारण बताया। अपने दोस्त दुर्गासिंह की अस्वस्थता का समाचार सुन कर याङ्ग बहुत चिन्तित हुआ। लेकिन उसने कहा- "वह लाल दवा मेरे पास तो है नहीं। तैयार करने के लिए दूर की पहाड़ियों पर से एक पेड़ की पत्तियाँ चाहिए।" यह कह कर उसने प्रसादसिंह को उस पेड़ का हुलिया बता दिया। दूसरे दिन सबेरे याङ्ग के नौकरों को



साथ लेकर प्रसादसिंह पहाड़ियों की ओर चल पड़ा। शाम तक वह उन पेड़ों की जगह पहुँच गया। नौकरों ने जल्दी-जल्दी पत्तियाँ तोड़ कर बोरों में भरीं। तब तक सूरज डूब चला था। सब लोग पहाड़ों से नीचे उतरने लगे।

फैलते हुए अन्धेरे में बड़ी बड़ी चट्टानों, गहरी खाइयों और खन्दकों वाला वह पहाड़ी प्रदेश बड़ा भयानक लग रहा था। अब उनके नज़दीक ही शेरों की दहाड़, बाघों की गरज और भेड़ियों की गुर्राहट सुनाई पड़ने लगीं। डर से थर-थर काँपते और बगलें झाँकते नौकरों को साहस दिलाते, मशाल हाथ में लेकर आगे-आगे उन्हें राह दिखाते, जङ्गल-झाड़ियों को पार कर आधी रात को प्रसादसिंह पहाड़ से उतरा और सबेरा होते-होते वह सकुशल याङ्ग के घर पहुँच गया।

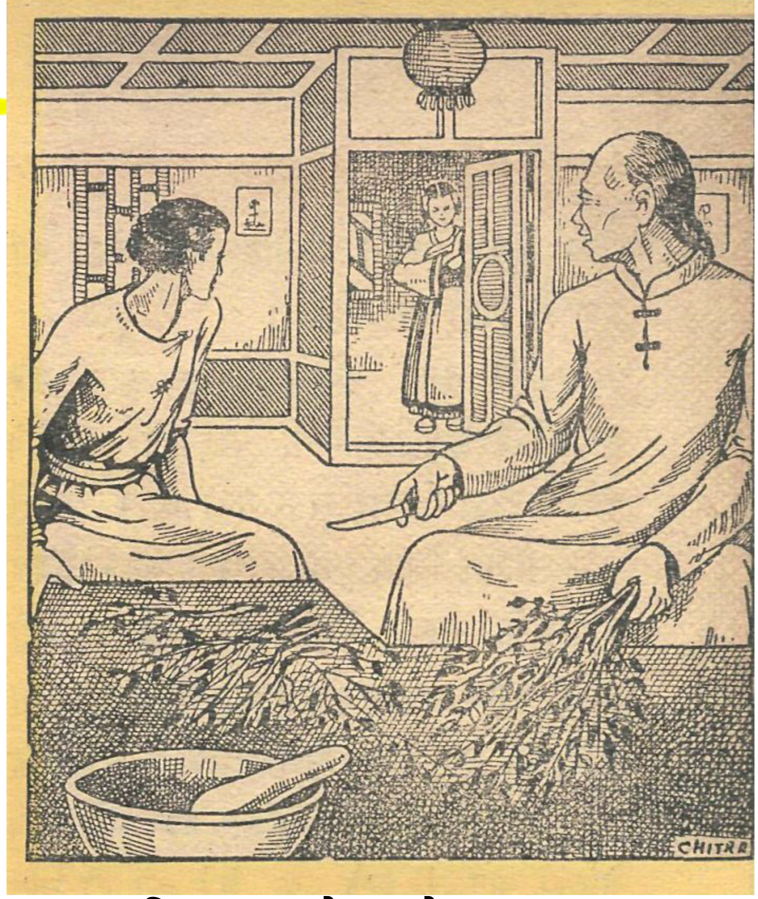
याङ्ग तुरन्त दवा तैयार करने लग गया। प्रसाद सिंह को बड़ी खुशी हुई कि उसका कार्य सफल होने वाला है। फिर भी उसके मन में एक सन्देह था। दवा चुक जाने पर फिर वह क्या करेगा ? क्या फिर चीन आएगा ? आखिर बहुत दिमाग लड़ाने पर उसे एक उपाय सूझ गया। उसने सोचा-"दवा तैयार करने की रीति सीख लूँ तो बहुत अच्छा हो। तब तो सिर्फ पिताजी को ही नहीं, दूसरे मरीज़ों को भी दवा दे सकूँगा। और अगर दवा बेचने लग जाऊँगा तो थोड़े ही दिन में मालामाल हो जाऊँगा।"

यह सोच कर उसने याङ्ग से पूछा-"मुझे दवा तैयार करने का ढङ्ग सिखा देने में आपको कोई उज्र है?"

उसका सवाल सुन कर याङ्ग ने एक लम्बी साँस भरी। आखिर खाँस कर यों कहना शुरू किया-"मैंने अनेक कष्ट उठा

कर यह दवा तैयार करना सीखा है। मैंने पहले सोचा कि अपने लड़के को ही इसका रहस्य बताऊँगा। लेकिन वह तो सिपाही बन कर युद्ध में चला गया। कौन कह सकता है कि वह लौटेगा कि नहीं ?" यों कहते कहते बूढ़े का गला रुँध गया और आँखों से आँसू उमड़ आए। उसने आँसू पोंछ कर फिर कहना शुरू किया-"एक लड़की बची है। वही मेरा सब कुछ है। सुनो, तुम मेरे दोस्त के लड़के हो। बहादुर हो, निडर हो। और सबसे बड़ी बात यह है कि गुणवान हो। तुम मेरी लड़की से ब्याह कर लो। इस दवा का राज़ मैं तुम्हें बता दूँगा।" यह कह कर उसने पुकारा-"रिङ्गलिङ्ग !" बगल की कोठरी का दरवाज़ा खोल कर एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की बाहर झाँकने लगी। "यही मेरी लड़की है।" बूढ़े याङ्ग ने प्रसादसिंह की तरफ देख कर कहा।

उस लड़की को देख कर प्रसादसिंह का बदन थर-थर काँपने लगा। पसीने की धारा बह चली। लड़की देखने में डरावनी लगती थी। मुँह पर चेचक के दाग थे। आँखें छोटी-छोटी और नज़र ठीक उल्लू जैसी। फिर



प्रसादसिंह डरा तो इसमें अचरज की कौन सी बात?

"सोचो ! तुम्हारे पिता की पीडा आए दिन के लिए दूर हो जाएगी ! कुछ ही दिनों में इस दवा को बेच कर तुम करोड़पति बन जाओगे।" याङ्ग ने उसे बढ़ावा देते हुए कहा।

प्रसादसिंह चौंक पड़ा जैसे अभी नींद से जंगा हो। उसने धीमे स्वर से 'हाँ' कर दी।

बड़ी धूम-धाम से प्रसादसिंह का ब्याह रिङ्गलिङ्ग से हो गया। याङ्ग ने दामाद को लाल दवा तैयार करने का भेद सिखा दिया। आखिर दस नौकरों को

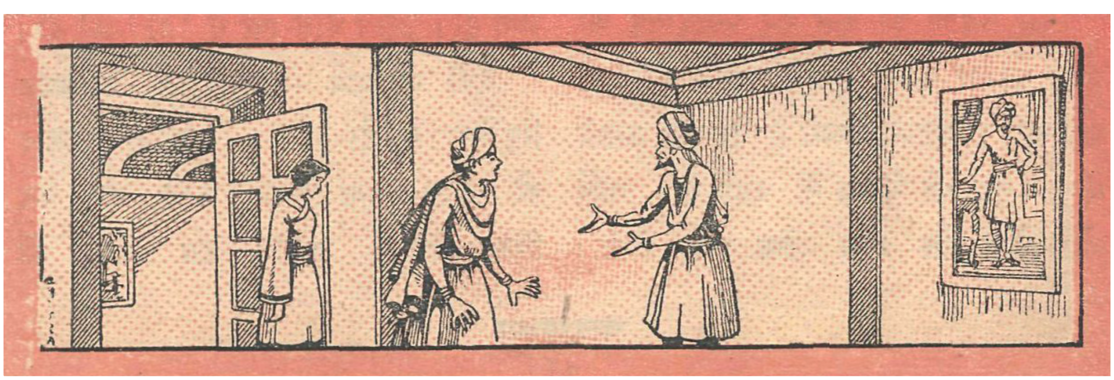
साथ देकर उसने दामाद और बेटी को देश से बिदा कर दिया।

किसी तरह अनेकों कष्ट उठा कर प्रसादसिंह छः महीने के बाद घर पहुँचा। जाकर देखा तो घर सूना पड़ा था। चारों ओर मातम छाया था। एक बूढ़ा नौकर दीवार के सहारे बैठा कुछ बड़बड़ा रहा था। उसने उठ कर प्रसादसिंह को पहचाना और रोते हुए सारा हाल बताया। दुर्गासिंह को मरे करीब दो महीने हो चले थे। बेचारा आखिरी क्षण तक बेटे की ही याद करता रहा।

अब प्रसादसिंह की छाती में शोक का तूफान उठा। वह बारम्बार सर धुनने लगा कि अनेकों कष्ट उठा कर लाई हुई उसकी दवा पिता के किसी काम न आई। उसी दवा का भेद जानने के लिए उसने बदसूरत और नफ़रत पैदा करने वाली लड़की से ब्याह किया था। यह सब किसलिए ? अपने पिता के लिए ही तो ! लेकिन उसका सारा श्रम, उसका सारा त्याग बेकार गया।

जिस तरह बदन पर के घाव दवा लगाने से धीरे धीरे भर जाते हैं, उसी तरह समय की दवा लगने से मन के घाव भी धीरे-धीरे अच्छे हो जाते हैं। कुछ दिन बाद प्रसादसिंह भी अपना शोक भूल गया। उसने वह लाल दवा तैयार करके दूर दूर के शहरों और गाँवों में बिकवाई और अनेक लोगों की पीडा दूर करके आराम पहुँचाया। कुछ ही दिनों में वह करोड़पति बन गया।

प्रसादसिंह की सारी जवानी अपनी पत्नी से नफ़रत करने में कट गई। लेकिन अशेष धन का स्वामी होने के कारण उसको बुढ़ापे में बहुत सुख पहुँचा। वह सारा धन उसे रिङ्गलिङ्ग से ब्याह करने के कारण मिला था। इसलिए उसे बुढ़ापे में अपनी पत्नी के प्रति प्रेम पैदा हो गया। उनकी ज़िन्दगी सुख से कट गई।





सूरजसिंह और धीरजसिंह अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले दो किसान थे। वे खेती-बारी से लेकर हर छोटे से छोटे काम में एक दूसरे की मदद किया करते थे। इस तरह उनके दिन चैन से गुजर रहे थे। उनकी दोस्ती देख कर गाँव के सब लोग दाँतों उँगली काटते थे।

अचानक एक दिन उन दोनों में किसी बात पर झगड़ा हो गया और वे एक दूसरे को कोसने लगे। अब बात यहाँ तक बढ़ी कि हाथा-पाई की नौबत आ गई। यह देख कर सब को अचरज हुआ। लोगों ने झगड़े का कारण जानने और दोनों का क्रोध शान्त करने की बहुत कोशिश की। लेकिन बहुत समझाने-बुझाने पर भी दोनों पड़ोसी शान्त न हुए।

गाँव वालों की समझ में न आया कि वे अब क्या करें। इतने में लम्बी, सफेद दाढ़ी और प्रशान्त मुखड़ा लिए एक बूढ़ा वहाँ आ पहुँचा।

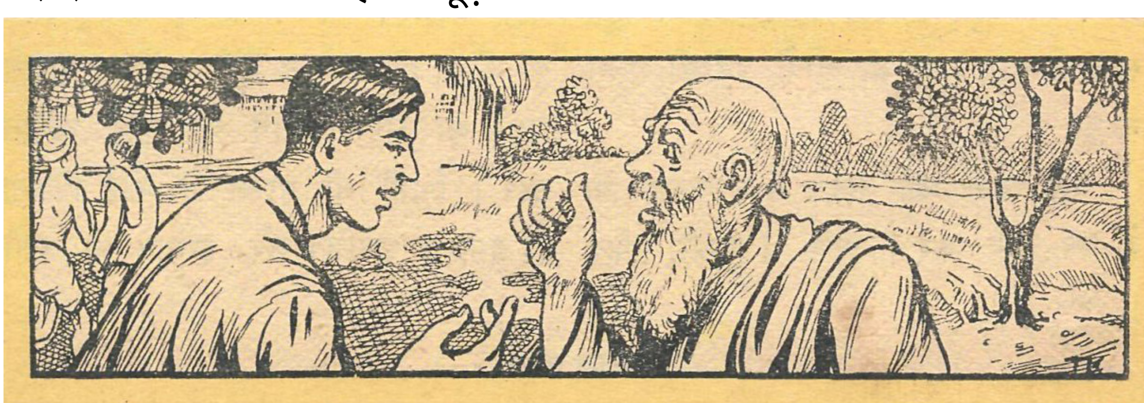
उस बूढ़े के चेहरे की दमक और उसकी लम्बी, सफेद दाढ़ी देखते ही दोनों पड़ोसी शान्त हो गए। बूढ़ा अधखुली आँखों से उनकी ओर देख रहा था। शरमा कर अब दोनों ने विनय सहित बूढ़े को प्रणाम किया और अपने झगड़े का कारण बताने लगे।

बूढ़े ने हाथ से एक इशारा किया और वे दोनों चुप हो गए। तब वह सिर्फ उन दोनों से ही नहीं, चारों ओर जितने लोग जमा थे, उन सब से कहने लगा-"इन्सान को एक दूसरे से कभी झगड़ना नहीं चाहिए। कोसने और हाथा-पाई करने की नौबत ही आने न देनी चाहिए। मुझसे झगड़े का कारण बताने की कोई जरूरत नहीं। किसी भी हालत में कोई कितना ही क्यों न उत्तेजित करे, इन्सान को अपने

प्रभात कुमार

भाई पर गुस्सा नहीं करना चाहिए।" सिर्फ सूरजसिंह और धीरजसिंह ही नहीं; वहाँ जितने लोग थे सब सन्न रह गए चार पाँच मिनट बीत गए। तब सुनने वालों में से एक जवान ने उस बूढ़े के पास आकर कहा-"दादा ! गुस्सा करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। यह सम्भव नहीं कि किसी भी हालत में वह गुस्सा न करे !" तब बूढ़ा ठठा कर हँसा और अपनी सफेद, लम्बी दाढ़ी सहला कर बोला-"क्यों सम्भव नहीं ! सुनो, मैं अपने ही अनुभव से बताता हूँ। मुझे किसी भी हालत में गुस्सा नहीं आता। इन्सान तो क्या, देवता और दैत्य लोग भी मुझे चिढ़ा नहीं सकते।"

सब लोग उस जवान को क्रोध से घूरते हुए एक एक कर उस बूढ़े को प्रणाम करके जाने लगे। तब जवान ने बूढ़े के सामने आकर कहा- "दादाजी !" "क्या बात है ?" बूढ़े ने मुसकुराते हुए पूछा। "दादाजी !" जवान ने फिर कहा। "क्या है ? बताओ न ?" बूढ़े ने कहा। इस बार उसके चेहरे पर मुसकुराहट न थी। "दादाजी !" वह जवान फिर बोला। "बात क्या है ? बताते क्यों नहीं ?" बूढ़े ने क्रोध से घूर कर कहा। "दादाजी !" उस जवान ने फिर कहा। "भई ! तू पागल तो नहीं है ?" बूढ़े की त्योरियाँ चढ़ गईं। "दादाजी !" जवान फिर बोला। "बदमाश ! ठहर ! तुझे मज़ा चखाता हूँ।" यह कह कर बूढ़े ने जवान को मारने के लिए हाथ उठाया। तब जवान ने खिलखिला कर कहा-"हाँ ! आदमी को किसी भी हालत में गुस्सा न करना चाहिए।" यह सुन कर बूढ़ा सिर झुका कर उलटे पाँव चला गया। इससे साबित होता है कि मनोविकारों पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। कहा भी है-"पर-उपदेश-कुशल बहुतेरे !"





रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – ६